आविष्कारक की जवाबदेही का सवाल

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

क्या किसी आविष्कारक को इस बात के लिए जवाबदेह ठहराया जा सकता है कि उसके आविष्कार का क्या उपयोग किया जाता है? यह सवाल बार-बार सिर उठाता है। हाल ही में यह सवाल स्विस रसायनज्ञ अल्बर्ट हॉफमैन के संदर्भ में उठा है, जिनकी मृत्यु 102 वर्ष की उम्र में पिछले माह हुई थी।

डॉ. हॉफमैन ने 1938 में दिमाग पर असर डालने वाली दवा लायसर्जिक एसिड डाईएथिलएमाइड की खोज की थी। इसे आम लोग एल.एस.डी. के नाम से जानते हैं। उस समय वे बेसल में सैंडोज़ दवा कंपनी में कार्यरत थे। उनके शोध कार्य के आधार पर औषधि वैज्ञानिकों और चिकित्सकों की राय थी कि इस औषधि का उपयोग मनोचिकित्सा में किया जा सकता है मगर यह काम किसी चिकित्सक की देखरेख में किया जाना चाहिए और दवा की खुराक पर नज़र रखनी होगी।

- § क्या एल.एस.डी. की खोज के लिए डॉ. हॉफमैन की आलोचना उचित है?
- § क्या डी.डी.टी. के लिए पौल मुलर को दिया गया नोबल पुरस्कार वापिस ले लिया जाना चाहिए?
- § प्लास्टिक की समस्याओं को देखते हुए क्या पोलीमर विज्ञान के प्रवर्तकों को दोषी ठहराया जा सकता है?

मगर जल्दी ही लोगों ने इस दवा का उपयोग एक 'आनंद औषधि' यानी प्लेज़र ड्रग के रूप में करना शुरू कर दिया। जिन लोगों ने इस दवा का उपयोग 'पारलौकिक आनंद की अनुभूति' के लिए किया, उनमें से कुछ अपना दिमाग गंवा बैठे जबकि कुछ लोग तो जान से ही हाथ धो बैठे।

डॉ. हॉफमैन की बहुत आलोचना हुई और कुछ लोगों ने तो दुनिया में एल.एस.डी. पेश करने के लिए उन्हें निजी तौर पर दोषी ठहराया। अलबत्ता डॉ. हॉफमैन ने अपने बचाव में यह दलील दी थी, "एल.एस.डी. का इतिहास बखूबी दर्शाता है कि जब इसके ज़ोरदार असर को लेकर गलतफहमी हो जाती है और इसे प्लेज़र ड्रग मानने की भूल की जाती है, तो परिणाम घातक हो सकते हैं।"

हॉफमैन अकेले नहीं हैं। वे उन खोजकर्ताओं की जमात के हिस्से हैं जिन पर बुराई को जन्म देने का आरोप लगता रहता है। मसलन, डी.डी.टी. नामक कीटनाशक पर ही गौर कीजिए। डी.डी.टी. एक रसायन है जिसकी खोज एक रसायन प्रयोगशाला में आज से करीब 80 साल पहले हुई थी। 1960 के दशक से ही इसने दुनिया भर में मलेरिया नियंत्रण में अहम भूमिका निभाई है। मगर इसके एक दशक बाद ही यह पता चलने लगा था कि इसके अंधाधुंध उपयोग के कुप्रभाव होते हैं। डी.डी.टी. के अंश हर तरफ पाए जाने लगे - पेड़-पौधों, जंतुओं, यहां तक कि मां के दूध में भी। इस वजह से इसके उपयोग पर प्रतिबंध लग गया। जिस चीज़ को मानवता के लिए वरदान कहा गया था, वह एक अभिशाप साबित हुई। तो क्या डी.डी.टी. के लिए पौल मुलर को दिया गया नोबल पुरस्कार वापिस ले लिया जाना चाहिए?

प्लास्टिक और व अन्य कृत्रिम पोलीमर्स भी विज्ञान के असाधारण आविष्कार हैं। इनके बगैर आज की दुनिया की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वास्तव में पोलीमर्स ने ही रासायनिक उद्योग ड्यूपॉन्ट को यह नारा देने को प्रेरित किया हैः बेहतर जीवन, रसायन शास्त्र के साथ। पोलीमर्स मानव सहूलियत, उपयोगिता व कल्याण में रसायन शास्त्र का सबसे महत्वपूर्ण योगदान है। मगर दूसरी ओर, इन्होंने पूरे पर्यावरण में गंदगी फैलाई है, नालियों को चोक कर दिया है और कई प्राणियों का जीवन खतरे में डाल दिया है।

प्रकृति में भी पोलीमर्स पाए जाते हैं। जैसे पेड़-पौधों व जंतुओं के शरीर में कई पोलीमर्स बनते हैं। मगर इनकी खूबी यह है कि ये समय के साथ नष्ट होते हैं और धीरे-धीरे

गायब हो जाते हैं। इनके विघटन का काम मूलतः सूक्ष्म जीवों द्वारा किया जाता है। दूसरी ओर, कई कृत्रिम पोलीमर्स इस तरह से जैव-विघटनशील नहीं होते।

इसी के मद्दे नज़र यह आव्हान किया जाता है कि प्लास्टिक का उपयोग कम से कम करें। यह सही है कि प्लास्टिक्स के व्यापक इस्तेमाल ने बड़े पैमाने पर नुकसान किया है मगर क्या इसके लिए पोलीमर विज्ञान के प्रवर्तकों को दोषी ठहराया जा सकता है?

कोई आविष्कारक या खोजकर्ता जादुई चिराग को रगड़ता है और जिन बाहर आ जाता है। यह जिन देवदूत भी हो सकता है या हो सकता है कि साक्षात शैतान हो। कई बार तो आविष्कारक को वह पदार्थ बनाना भी नहीं पड़ता। वह तो सिर्फ विचार विकसित करता है।

आइंस्टाइन ने बम नहीं बनाया था। उन्होंने तो भौतिक शास्त्र के तर्क के आधार पर दर्शाया था कि थोड़े से पदार्थ को ऊर्जा की विशाल मात्रा में तबदील किया जा सकता है। इन्हीं आइंस्टाइन ने बम की विनाशकारी शक्ति से भयभीत होकर अमरीकी राष्ट्रपति को पत्र लिखकर बम न बनाने का अनुरोध भी किया था।

इस बात में कोई दो मत नहीं हो सकते कि आइंस्टाइन के ज़माने के और उनके बाद के वैज्ञानिकों ने ही इस विचार की परिणति पर विचार किया था और यह देखा था कि यह कहां तक जा सकता है। इन लोगों ने इस विचार को गहराई में परखा था।

1970 का दशक जीव विज्ञान में अभूतपूर्व प्रगति का दौर था। इसी दौर में हमने अपने शरीर की कोशिकाओं में जीन्स को पहचानना सीखा था, इन्हें एक जगह से काटकर दूसरी जगह, किसी दूसरे जीव की कोशिका में रोपना सीखा था। इसके साथ ही डी.एन.ए. टेक्नॉलॉजी के युग का आगाज़ हुआ था। जिस काम को करने में प्रकृति को करोड़ों साल लगे थे, उसे हम प्रयोगशाला में चंद दिनों में करने के काबिल हो गए। इसके साथ ही, किसी अज्ञात सूक्ष्मजीव को पर्यावरण में छोड़ने के नैतिक मुद्दों और खतरनाक परिणामों पर विचार करना ज़रूरी हो गया।

और विचार किया भी गया। नोबल पुरस्कार विजेता पौल बर्ग के नेतृत्व में कई सारे जीव वैज्ञानिक स्व-प्रेरणा से कैलीफोर्निया में मिले ताकि इस नई जैव-टेक्नॉलॉजी के विविध संभावित परिणामों - जैविक, पर्यावरणीय, सामाजिक, और नैतिक - पर विचार-विमर्श कर सकें। इस बैठक के अंत में वे इस नतीजे पर पहुंचे कि स्व-प्रतिबंध की एक नीति की ज़रूरत है।

'मुमानियत' की फेहरिस्त लंबी थी। यह निर्णय हुआ कि इस पर समय-समय पर पुनर्विचार किया जाएगा और आकलन के आधार पर छूट दी जाएगी। दुनिया भर के जीव वैज्ञानिकों से अनुरोध किया गया कि वे इन दिशा निर्देशों का पालन करें। उल्लेखनीय बात है कि एक पेशेवर समूह के रूप में जीव वैज्ञानिकों ने इन दिशा निर्देशों का पालन स्वैच्छिक रूप से किया है।

इसका मतलब यह हुआ कि सबसे पहले तो बोतल से निकलने वाले जिन का एक आकलन किया गया कि वह क्या कर सकता है और फिर उसे क्रमशः बोतल से निकलने दिया गया।

आज भी तकनीकी रूप से यह संभव है कि नए जीव विज्ञान का इस्तेमाल करके खुद का क्लोन बनाया जा सके मगर उक्त दिशा निर्देश इसका निषेध करते हैं। यदि कोई ऐसा करता है, तो चाहे उसके देश में इसके खिलाफ कानून हों या न हों, दुनिया भर के जीव वैज्ञानिक उससे कन्नी काट लेंगे, उसका कैरीयर खटाई में पड़ जाएगा।

रोचक बात यह है कि जहां वैज्ञानिक एक समूह या श्रेणी के रूप में साथ आकर इस तरह का आत्म-संयम बरतते हैं, वहीं व्यापारी, राजनेता और यहां तक कि सामाजिक नेता भी ऐसा नहीं करते। कुछ धार्मिक नेताओं के बीच ज़रूर कुछ हिचकते कदम उठाए गए हैं ताकि विभिन्न धर्मों के बीच आम सूत्र खोजे जा सकें और सह-अस्तित्व का धरातल तैयार किया जा सके।

इस तरह के संवाद ज़्यादा होंगे तो कई विवाद के मुद्दे सामने रखे जा सकेंगे और समाधान पाने की कोशिश हो सकेगी। कम से कम इतना तो हो ही सकेगा कि शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के तौर-तरीके खोजे जाएं। यह एक मामला है जहां विज्ञान रास्ता दिखा सकता है। ***(स्रोत फीचर्स)***